वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परम्पराओं का महत्व एवं प्रासंगिकता

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ (उ.प्र.)

शोध सारांश

अधिकतर परम्पराएं मौखिक परम्परा की वाहक होती हैं। ये केवल धर्म और धर्म विधियों में ही उपलब्ध नहीं होती! इन्हें तिथि–त्यौहार, मेले, खान–पान, वस्त्राभूषण आदि में देखा जा सकता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव किसी न किसी परम्परा से बंधा हुआ पाया जाता है। इन परम्पराओं में स्थानीय लोगों के दुःख दर्द का विषद् इतिहास भी जुड़ा हुआ है। इतिहास भी प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल के पड़ाव तक आ गया। इस लम्बी अवधि में यहाँ कई विदेशी आक्रमण होने के साथ ही धर्म परिवर्तन हुए और कई विदेशी भारत में बस गये। इन सबका परिणाम परम्पराओं पर पड़ा। कुछ मौलिक परम्पराएं बदल गईं। कुछ नई परम्पराएं आ गईं और धीरे–धीरे लेकिन निश्चित रूप से इस देश में कुछ मिली–जुली यानी मिश्रित परम्पराएं उभरकर सामने आईं। वर्तमान में देश में परम्पराओं की जो संरचना है वह बहुआयामी है। परम्पराओं के टूटने, बदलने एवं विकास की प्रक्रिया में आधुनिकता का एक बड़ा योगदान रहता है, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है। भारत में आधुनिकता का यानी; पूंजीवाद, उद्योगवाद और धर्म निपरेक्षता का जो स्वरूप है वह यहाँ की विशिष्टता है। आधुनिकता की संरचना में परम्परा की भूमिका को कभी भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। भारतीय समाज में आज जो भी आधुनिकता है, उसका बहुत कुछ निर्धारण यहाँ की परम्पराओं ने किया है।

Key Words: *वर्तमान परिप्रेक्ष्य ,मानवजीवन, पीढ़ी–दर–पीढ़ी, परम्पराएँ ,महत्व ,प्रासंगिकता।*

मानव को अपने जीवनकाल में दो तरह की विरासत मिलती है। पहली प्राणीशास्त्रीय जो कि उसे शारीरिक रचना व जीवनगत लक्षण प्रदान करती है और यह माता–पिता के वाहाकाणुओं के द्वारा मिलती है। इसे हम वंशानुक्रम कहते हैं। दूसरी समाज द्वारा प्रदत्त सामाजिक विरासत है। व्यक्ति को जीवनयापन करने के लिए अनेक भौतिक और अभौतिक वस्तुओं की जरूरत होती है, जो समाज के द्वारा उसे प्राप्त होती हैं। गाड़ी–बंगला, रेडियो, टेलीविजन, पंखा, वस्त्र आदि अनेक प्रकार की वस्तुएं भौतिक विरासत हैं। धर्म, विचार, दर्शन, नियम, प्रथाएं, रीति–रिवाज, परम्पराएं आदि अभौतिक विरासत हैं। सामाजिक विज्ञान का अभौतिक पक्ष ही परम्परा कहलाता है।

परम्पराएँ पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलने वाली एक सतत् प्रक्रिया है, जिसे मनुष्य की सामाजिक विरासत के रूप में परम्परा के नाम से जाना जाता है। परम्परा में जनरीतियों, रूढ़ियों और प्रथाओं को भी सम्मिलित करते हैं, इसके अतिरिक्त चिन्तन, ज्ञान, विचार, विश्वास, आदत, कानून, कला, संगीत आदि को सम्मिलित करते हैं, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरित होते रहते हैं।

'Tradition' शब्द की उत्पत्ति 'Tradera' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है, 'हस्तान्तरित करना' 'Tradition' का संस्कृत शब्द 'परम्परा' है जिसका अर्थ 'ऐतिह' अर्थात् विरासत में मिलना। इस प्रकार परम्परा का सम्बन्ध उन बातों से है जो अत्यन्त प्राचीन काल से ही चली आ रही हों और जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरित होती रही हों। ऋषियों–मुनियों द्वारा संचित ज्ञान, कर्म, पुनर्जन्म, पुरुषार्थ की धारणायें जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी चली आ रही हैं रूढ़ि, प्रथा या जनरीति तो नहीं हाँ परम्परा अवश्य हैं। पराम्पराएं मनुष्य की ऐतिहासिक तथा सामाजिक सांस्कृतिक विरासत को न केवल बनाये रखती हैं अपितु उन्हें स्पष्ट करने का भी कार्य करती हैं। इस सन्दर्भ में एक बात उल्लेखनीय है कि परम्परा लम्बे समय से संरक्षित तो होती है, किन्तु यह पूर्णतः अपरिवर्तनशील या नितान्त रूढ़िवादी नहीं होती वरन् सामूहिक अनुभवों के अनुरूप इसमें आंशिक रूप में परिवर्तन होता रहता है।

परम्परा की परिभाषा देते हुए जिन्सबर्ग ने लिखा है– ''परम्परा से अभिप्राय उन सब विचारों, व्यवहार की आदतों तथा प्रथाओं से है, जो किसी समाज की विशेषता है और जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती हैं । जेम्ब ड्रेवर ने परम्परा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है परम्परा, कानून, प्रथा, कहानी तथा किवदंती का वह संग्रह है जो मौखिक शब्दों द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जाता है ।

डॉ0 वी0के0 आर0वी0 राव के शब्दों में– ''परम्परा से अभिप्राय उन आदतों, प्रथाओं, मनोवृत्तियों तथा जीवन प्रतिमानों से है, जो संस्थाओं में निहित हो जाती है तो इन संस्थाओं को स्थायित्वता एवं स्थापत्त्यता के कारण इनमें पूरी तरह विलीन हो जाती है। इस प्रकार परम्परा से अभिप्राय युग तथा इनमें पायी जाने वाली एक लम्बी अवधि की निरन्तरता से है।'' सतत निरन्तरता के कारण परम्परायें बहुत अधिक प्रभावशाली और शक्तिशाली होती हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि परम्पराएं किसी भी समाज में प्रचलित प्रथाओं व जनरीतियों का सम्पूर्ण योग है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती हैं। परम्पराओं का पालन लोगों द्वारा बिना किसी तर्क–वितर्क के स्वतः ही किया जाता है। परम्पराओं की विशेषताएं इस प्रकार हैंः–

(1) परम्पराएं लम्बे समय की देन होती हैं।, उनमें निरन्तरता होती है। (2) परम्पराएं पीढ़ी–दर–पीढ़ी रूपान्तरित की जाती हैं। (3) परम्पराओं का पालन अचेतन रूप से एवं बिना सोच–विचारे किया जाता है। (4) परम्पराओं में परिवर्तन धीमी गति से होता है। (5) परम्पराओं का हस्तान्तरण लिखित व मौखिक–किसी भी प्रकार से हो सकता है। (6) परम्पराओं में कठोरता पायी जाती है। (7) परम्परा रीति–रिवाज, प्रथा व रूढ़ि की तुलना में एक व्यापक अवधारणा है। (8) परम्परा किसी समाज की ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विरासत होती है। (9) परम्परा परिवर्तन की विरोधी होती हैं।

परम्परा में दृढ़ता की प्रबल शक्ति होती है। सिसरो ने कहा था, ''यदि पूर्व की घटनाओं की स्मृतियां वर्तमान के अतीत के साथ सम्बद्ध न करें तो फिर मानव है ही क्या? परम्परा के बिना मानव जीवन विश्रृंखलित हो जायेगा।'' मैक्डूगल ने लिखा है, ''हम जीवितों की अपेक्षा मृतकों से अधिक सम्बन्धित होते हैं।'' समस्याओं को सुलझाने एवं परिस्थितियों का सामना करने के पुराने ढ़ंगों के आधार पर नये ढ़ंगों की खोज की जा सकती है। परम्पराएं हमें धैर्य, साहस एवं आत्मविश्वास प्रदान करती हैं, हम परम्पराओं का महत्व इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं।

(1) परम्पराएं सामाजिक जीवन को सरल बनाती हैं, हमारे व्यवहार का मार्ग–दर्शन करती हैं तथा सामाजीकरण में योग देती हैं, (2) परम्पराएं

सामाजिक जीवन में एकरूपता लाती हैं, (3) परम्पराएं व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करती हैं, (4) ये व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती हैं, (5) परम्पराओं में भूतकाल का अनुभव निहित होता है, अतः हम उनके सहारे जीवन संकटों एवं परिस्थितियों का मुकाबला आसानी से कर सकते हैं। (6) परम्पराएं राष्ट्रीय भावना के विकास में सहायक होती हैं। गिन्जबर्ग लिखते हैं, ''परम्पराएं तीव्रता के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। परम्परा सामाजिक तनाव को कम करके सामाजिक विकास की एक दिशा निर्धारित करती हैं। परम्पराओं से सामाजिक व धार्मिक संस्थाओं का अस्तित्व बना रहता है।

भारतीय समाज विश्व के अन्य समाजों की अपेक्षा अपनी विशिष्टता रखता है, इसका खुशी–गम का इतिहास विशिष्ट है, यही कारण है कि इसकी परम्पराओं की पहचान उसे अन्य समाजों से पृथक रखती है। परम्पराएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित की जाती हैं। ये समूह की आदतें हैं, व्यक्ति विशेष की कोई परम्परा नहीं होती। व्यक्ति जब इस समूह को छोड़ता है (मृत्यु की स्थिति में) तो उसकी आदतें भी छूट जाती हैं। लेकिन समूह या समाज बराबर चलते रहते हैं और इसलिए परम्पराएं भी चलती रहती हैं। पुरानी परम्पराएं नई परम्पराओं को स्थान देती हैं। आधुनिकता परम्परा नहीं है, क्योंकि इसकी गतिशीलता तीव्र होती है। उसमें व्यापकता और एक प्रकार की सार्वभौमिकता होती है, जबकि परम्पराएं धीरे–धीरे अपना स्थान बनाती हैं।

परम्पराएं सामूहिक याददाश्त की अभिव्यक्ति हैं। ये केवल धर्म और धर्म विधियों में ही उपलब्ध नहीं होती! इन्हें तिथि–त्यौहार, मेले, खान–पान, वस्त्राभूषण आदि में देखा जा सकता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति किसी न किसी परम्परा से बंधा हुआ पाया जाता है। इन परम्पराओं में स्थानीय लोगों के दुःख दर्द का विषद् इतिहास भी जुड़ा हुआ है। इतिहास भी प्राचीन काल से चलकर मुगलकाल या मध्यकाल के पड़ाव तक आ गया। इस लम्बी अवधि में यहाँ कई विदेशी आक्रमण हुए कई प्रकार के धर्म परिवर्तन हुए और कई विदेशी भारत में बस गये। इन सबका परिणाम परम्पराओं पर पड़ा। कुछ मौलिक परम्पराएं बदल गईं। कुछ नई परम्पराएं आ गईं और धीरे–धीरे लेकिन निश्चित रूप से इस देश में कुछ मिली–जुली यानी मिश्रित परम्पराएं उभरकर सामने आईं। वर्तमान में देश में परम्पराओं की जो संरचना है वह बहुआयामी है। परम्पराओं के टूटने, बदलने एवं विकास की प्रक्रिया में आधुनिकता का एक बड़ा योगदान रहता है, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है। भारत में आधुनिकता का यानी; पूंजीवाद, उद्योगवाद और धर्म निपरेक्षता का जो स्वरूप है वह यहाँ की विशिष्टता है। आधुनिकता की संरचना में परम्परा की भूमिका को कभी भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। हमारा यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय समाज में आज जो भी आधुनिकता है, उसका बहुत कुछ निर्धारण यहाँ की परम्पराओं ने किया है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में देखें तो यूरोप और अमेरिका की आधुनिकता का निर्माण अनेक क्रांन्तियों के माध्यम से हुआ। यहाँ वैज्ञानिक, औद्योगिक, राजनीतिक क्रांन्तियों के साथ दो बड़े विश्व युद्ध भी हुए तथा वियतनाम युद्ध ने अमेरिका की कमर कमजोर कर दी। ये सब परम्पराएँ थीं और इन्होंने आधुनिकता के भविष्य को तय किया। भारतीय परिवेश की परम्पराओं में स्थितियाँ कुछ भिन्न थी, यहाँ पहले देशी राजा, महाराजा थे इसके बाद विदेशी आक्रमण हुए और फिर उपनिवेशवाद के रूप में साम्राज्यवाद आया। इन सब राजनीतिक और औद्योगिक कारकों ने जिस आधुनिकता को जन्म दिया, वह यहाँ की विशिष्टता के अनुरूप है, क्योंकि यहाँ का सामंतवाद और पूँजीवाद यूरोप के सामंतवाद और पूंजीवाद से भिन्न था! इसलिए यहाँ की परम्पराएँ

भी विश्व के अन्य समुदाय की परम्पराओं से भिन्न थीं।

परम्पराओं का संगठन हिन्दुओं में सिद्धान्त पर आधारित है। आत्मा कभी मरती नहीं है, इसे कोई नष्ट नहीं कर सकता, न शस्त्र, न अग्नि और न और कुछ। मोक्ष की तलाश में यह आत्मा पुनर्जन्म के चक्र में घूमती है। किसी जन्म में पुण्य कर्म करने से ही उसका मोक्ष होता है। यदि पुनर्जन्म का सिद्धान्त हिन्दू धर्म का केन्द्रीय सिद्धान्त है, तो कर्म इसकी आत्मा। यहाँ हमारा हिन्दू धर्म की व्याख्या एवं मूल्याकंन करना उद्देश्य नहीं है, परन्तु हमारा मकसद यहाँ केवल यही है कि भारतीय समाज में ऐसी अनेक परम्पराएं रही हैं, जिन्होंने धर्म का सहारा लेकर दलित वर्ग पर सदैव शोषण एवं अत्याचार किए हैं।

डी0पी0 मुखर्जी परम्परा की व्याख्या करते हुए एक सामान्य धारणा को लेकर चलते हैं कि परम्परा एक सामाजिक व्यवहार है। यह व्यक्तियों के व्यवहार को मानक और मूल्य प्रदान करता है। इसका तात्पर्य अतीत के काल्पनिक या वास्तविक व्यवहार को निरन्तरता देना होता है। इसके अन्तर्गत धर्म विधियाँ और प्रतीकात्मक व्यवहार सम्मिलित हैं। डी0पी0 मुखर्जी परम्परा की व्याख्या आधुनिकता के सन्दर्भ में करते हैं। आपका मानना है कि भारतीय परम्पराओं के स्रोत बौद्ध धर्म इस्लाम और पश्चिमी संस्कृति में हैं। इन धार्मिक ग्रन्थों में जो कुछ है तथा हिन्दुओं के वेदान्त में जो कुछ वास्तविकता है वह परम्पराओं और धर्म विधियों में निहित है, वही परम्परा है अर्थात् आधुनिक परिप्रेक्ष्य में धर्म विधियाँ और पश्चिमी संस्कृति ही भारतीय परम्परा को बनाती है। इस अवधारणा में डी0पी0 भारतीय और विदेशी दोनों परम्पराओं को जोड़ते हैं। इस दृष्टि से भारतीय परम्परा एक प्रकार का ऐसा संश्लेषण है, जिसमें भारतीय तथा विदेशी संस्कृतियाँ या मान्यताओं का गठबन्धन है।''[18]

भारतीय परम्पराओं का वर्गीकरण करते हुए डी0पी0 मुखर्जी का मानना है कि ये परम्परायें तीन प्रकार की होती हैं– (1) प्राथमिक (2) द्वितीयक (3) तृतीयक।

प्राथमिक परम्पराओं का परिपालन प्रत्येक हिन्दू के लिए अनिवार्य माना जाता है और इससे जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी की मुक्ति नहीं है। मृत्यु के बाद शरीर को अग्नि संस्कार के द्वारा पंचभूतों में विलीन करना प्राथमिक संस्कार का सम्पन्न होना माना जाता है। द्वितीय और तृतीयक परम्पराएं वैकल्पिक होती हैं और इसलिए इसमें व्यक्ति को थोड़ी–बहुत छूट मिल जाती है। डी0पी0 की परम्परा की व्याख्या में तर्क (**Reason**) को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है। यह तर्क व्यवहारिक और निराधार कल्पना **(Spaculative)** मात्र भी हो सकता है। लेकिन डी0पी0 मुखर्जी परम्परा में तर्क की भूमिका को आग्रहपूर्वक रखते हैं। आपकी दृष्टि से प्रगति के लिए उद्देश्य **(Purpose)** होना चाहिए और इस उद्देश्य का आधार तर्क होता है। डी0पी0 परम्परा के हिमायती रहे हैं और आपके अनुसार भारतीय समाज में परम्परा, धर्म, वेदान्त और पश्चिमी संस्कृति से आती हैं और इसमें अनिवार्य रूप से तर्क होता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से डी0पी0 मार्क्सवादी होने के कारण वे द्वन्द्व की धारणा से अत्यधिक प्रभावित ये। उन्हें परम्परा और आधुनिकता दोनों में द्वन्द्व दिखाई देता है। भारतीय समाज में जो भी परम्पराएं हैं वे सामाजिक तथा ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का परिणाम है और यह इतिहास डी0पी0 मुखर्जी की दृष्टि में निश्चित रूप से द्वन्द्वात्मक है। आपकी दृष्टि में भारत की बौद्धिक और कलात्मक उपलब्धियाँ किसी भी तरह से पश्चिम की तुलना में कमजोर नहीं है। इन परम्पराओं में वेदांत, पश्चिमी उदारवाद और मार्क्सवाद का संश्लेषण है।

मजुमदार का मुख्य कार्य संस्कृति के क्षेत्र में था और यह संस्कृति उनके लिए आदिवासियों की संस्कृति थी। उन पर **टाईलर** की संस्कृति की

अवधारणा का असर बहुत बड़ा था। इसी को उन्होंने आदिवासियों की संस्कृति के अध्ययन में लागू किया। संस्कृति की व्याख्या उन्होंने दो स्तरों पर की है। सबसे पहले वे **संस्कृति तत्वों** की पहचान करते हैं। और उसके इतिहास को बताते हैं। **यहीं पर वे परम्पराओं का उल्लेख करते हैं।** परम्पराओं के महत्व को अंकित करते हुए वे लिखते हैंः हमें अतीत (परम्पराओं) को वर्तमान के सन्दर्भ में समझना चाहिए और वर्तमान को अतीत के सन्दर्भ में। कभी स्वर्ण युग नहीं था और न भविष्य में यह कभी होगा। जीवन तो समंजन की एक प्रक्रिया है और यह बराबर प्रकट या उघड़ती रहती है। वे लोग जो इस समंजन को नहीं पाते, समाज उन्हें फेंक देता है और जो नई व्यवस्था के साथ अपना जोड़ बैठा लेते हैं, आगे निकल जाते हैं।

मजुमदार परम्परा और आधुनिकता को जोड़ते हैं। परम्पराएं अतीत की हैं। इनकी समाज में वैधता है लेकिन ये परम्पराएं जड़ नहीं हैं। इन्हें आधुनिकता के साथ समझौता करना पड़ता है। तभी ये जीवित रह सकती हैं। लेकिन इन परम्पराओं की अन्तर्वस्तु क्या है? मजुमदार के अनुसार किसी भी परम्परा में संस्कृति तत्व उसकी अन्तर्वस्तु होते हैं। दूसरे शब्दों में, समूह की नृजातीयता या एथनिसिटी ही उसकी परम्परा है। मजुमदार सही शब्दों में एक क्षेत्र कार्यकर्ता थे। तथा उनका बहुत कम वास्ता मानवशास्त्रीय सिद्धान्तों से था, उन्होंने यह स्थापित किया कि किसी भी संस्कृति की ताकत उसकी परम्पराएं होती हैं और परम्पराएं, इस अर्थ में ऐतिहासिक होती हैं। मजुमदार ने परम्पराओं की जो व्याख्या या परिभाषा की है, उसमें निम्न तत्व महत्वपूर्ण हैंः

1. परम्पराएँ अतीत को वर्तमान से जोड़ती हैं। वर्तमान की कोई भी व्याख्या अधूरी है। जब तक वह परम्पराओं को अपना केन्द्र नहीं मानती।
2. परम्परा को वर्तमान के साथ समायोजन करना पड़ता है। परम्परा में परिवर्तन निहित है।
3. परम्परा यदि जड़ हो जाती हैं तो इसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।
4. परम्परा वस्तुतः नृजातीयता यानी एथनिसिटी हैं।
5. परम्पराएँ हमारे सांस्कृतिक इतिहास की कड़ियाँ हैं, अवयव हैं।

डी0एन मजूमदार की एक मानवशास्त्री की तरह भारतीय समाज की व्याख्या बहुत बड़ी उपलब्धि है। उन्होंने वस्तुतः **संस्कृति के ऐतिहासिक विकास** की धारणा को सशक्त किया है और रुचिकर बात यह है कि इस विकास को उन्होंने जमीन से जोड़ा है। वे इसके विकास का प्रारम्भ आदिवासियों की संस्कृति से करते हैं। आगे चलकर वे परम्पराओं की व्याख्या आधुनिकीकरण के सन्दर्भ में करते हैं। उनके विचार में समाजशास्त्र में परम्परा कोई बहस का मुद्दा नहीं है। वे बहुत स्पष्ट हैं। परम्पराएं हमेशा आधुनिकता के साथ अनुकूलन करती आई हैं।

भारतीय समाज की कोई भी व्याख्या परम्पराओं के अभाव में नहीं की जा सकती, इस दृष्टि से परम्पराओं के विश्लेषण में श्रीनिवास का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह इसलिए कि श्रीनिवास परम्पराओं का महत्व क्षेत्रीय तत्वों के आधार पर (1) गांव से जोड़ते हैं और इनका

(2) केन्द्र धर्म तथा **धर्म विधियां** मानते हैं।

घुरिये ने स्पष्ट रूप से कहीं भी भारतीय परम्पराओं घुरिये और भारतीय परम्परा (Ghurye and Indian Traditions) का एक अध्ययन सामग्री के रूप में विश्लेषण नहीं किया है। सामाजिक परिवर्तन यदि होता है, तो हो जाये, लेकिन ये समाजशास्त्री प्रकार्यवाद को छोड़ते नहीं हैं। **विदेशों में सामान्यतया प्रकार्यवादी इतिहास विरोधी**

होते हैं। लेकिन हमारे देश में प्रकार्यवादी इतिहास प्रेमी हैं। उनका विश्वास है कि जब परम्पराओं को इतिहास के माध्यम से रखा जाता है, तब उनकी सामाजिक वैधता बढ़ जाती है। इसी कारण प्राच्य विद्यावादी, प्राचीन इतिहास में रुचि रखने वाले प्रकार्यवादी जिनमें श्रीनिवास, घुरिये, एस.सी. दुबे आदि हैं, बराबर परम्पराओं का उल्लेख करते हैं। इन लेखकों की दृष्टि में परम्पराएं सामान्यता रूढ़िवादी, दकियानूसी और अपरिवर्तनकारी हैं।

घुरिये भारतीय समाज को परम्पराओं से भरा हुआ एक ऐसा कैप्स्यूल समझते हैं, जिसके माध्यम से समाज के सम्पूर्ण क्षेत्रों का विवेचन किया जा सकता है। **घुरिये के लिये हिन्दू परम्पराएं चाहे वे जातियों की हों, धर्म की, साधुओं की या जनजातियों की, सभी का मापदण्ड हिन्दू परम्पराएं ही हैं। जिन समूहों में हिन्दू परम्परा का फीता सही नहीं बैठता, वे समूह हाशिये के समूह हैं, अर्थात् देश की मुख्य धारा से अलग–थलग हैं। शायह यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि घुरिये के लिये परम्परा एक प्रक्रिया न होकर स्वतः शोध (Heuristic) विधि है।**

घुरिये की दृष्टि में, परम्पराएं क्या हैं? इनकी अन्तर्वस्तु क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर उन्होंने जहां–तहां अपनी कृतियों में दिया है। **धार्मिक विश्वास, कर्मकाण्ड, संस्कार** आदि वे तत्व हैं जो हिन्दू परम्पराओं को बनाते हैं जो हिन्दू परम्पराएं हैं, वे उनकी दृष्टि में भारतीय परम्पराएं हैं। उनके अनुसार परम्परा पवित्र हैं, उनकी निरन्तरता पर समय की मोहर लगी है। ये परम्पराएं इतिहास तथा धार्मिक ग्रन्थों से मिलती हैं लेकिन इनकी व्यापकता लोक जीवन में भी देखने को मिलती है। परम्परा पर इतना अधिक लिखने के बाद भी घुरिये कहीं भी इन्हें आधुनिकता के साथ नहीं जोड़ते। वे अनिवार्य रूप से यह स्वीकार करते हैं कि भारतीय समाज की एकता उनकी परम्पराओं के कारण हैं। धर्म सम्पूर्ण देश को बांधे रखता है और देश ही क्यों, मिश्र, बेबीलोनिया, श्रीलंका आदि पड़ोसी देशों में भी ये भारतीय परम्पराएं थोड़ा बहुत अन्तर के साथ पाई जाती हैं।

सैद्धान्तिक रूप से देसाई कभी भूलकर भी परम्पराओं की व्याख्या प्राच्य या धार्मिक ग्रन्थों में नहीं खोजते। वे परम्पराओं को सामाजिक संस्थाओं जैसे गांव और परिवार में ढूंढ़ते हैं। समाजशास्त्रीय समस्याओं का विश्लेषण देसाई ने पश्चिमी समाज में नहीं खोजा। उनकी विधि जैसा कि मार्क्सवादियों के साथ होता है, इतिहास था। यह इतिहास भी मार्क्सवादी रहा है जो उत्पादन सम्बन्धों, उत्पादन शक्तियों और ऐतिहासिक द्वन्द्व के इर्द–गिर्द घूमता है। **सोश्यल बेकग्राउन्ड आफ इण्डियन नेशनालिज्म** उनका एक क्लासिकल ग्रन्थ है जिसमें वे मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास की व्याख्या करते हैं। उनकी इस व्याख्या में भारतीय धार्मिक परम्पराओं, कर्मकाण्डों और संस्कारों को कोई स्थान नहीं है। **उनके अनुसार परम्पराएँ वे हैं जिनका लोक जीवन के साथ धर्मनिरपेक्ष सम्बन्ध है।** गांव की अपनी परम्पराएं रही हैं। गांव की एकता इतिहास प्रसिद्ध रही है। गांव में साम्प्रदायिक समूहों की एकता भी जो किसी भी भेद–भाव को नहीं करती, गांव को यान्त्रिक बना देती है, इसका उल्लेख देसाई ने किया है। कुल मिलाकर देसाई ने परम्पराओं को जिस भांति परिभाषित किया है, इससे स्पष्ट है कि परम्पराएं अपनी प्रकृति में सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक तत्वों से जुड़ी हैं। इस तरह से धर्म और धार्मिक ग्रन्थों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं।

सोश्यल बेकग्राउण्ड पुस्तक में देसाई का कहना है कि इस देश में कुछ परम्पराएं रही हैं। भूमि का मालिकाना अधिकार हमेशा रैयत का रहा है और भूमि परम्परा से समुदाय की सम्पत्ति रही है। इस परम्परा को सबसे पहली बार **कार्नवालिस** ने ई. 1793 में तोड़ा जब उसने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में स्थायी भूमि व्यवस्था लागू की।

किसी भी आर्थिक परम्परा का इस तरह टूटना एक बहुत बड़ी घटना है। एक और परम्परा इसी युग में टूटी अब तक कृषि भूमि पर कृषक का अधिकार था। पर वह उसे केवल जोत ही सकता था। जोतने का यह अधिकार परम्परागत था। इस तरह ब्रिटिश सरकार के भूमि के मालिकाना अधिकार परम्परागत थे। ब्रिटिश सरकार ने भूमि के मालिकाना अधिकार स्वयं कृषक को दे दिये। इस तरह परम्पराएं टूटीं और भूमि कृषक की व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गई। इसी युग में उपनिवेशवाद नीति के गांवों में जातियों के परम्परागत धन्धों को समाप्त कर दिया गया। अब कारीगर, शिल्पकार अपने परम्परा के व्यवसायों को छोड़कर शहर की तरफ मुड़े।

परम्पराओं की परिभाषा और व्याख्या में देसाई ने एक जलविभाजक (Watershed) रेखा का कार्य किया है। वे परम्पराओं को अनिवार्य रूप से धर्मनिरपेक्ष मानते हैं। इनकी प्रवृत्ति, उनके अनुसार आर्थिक है और इन्हें सामाजिक तथा ग्रामीण संस्थाओं में देखा जा सकता है। देसाई का यह भी कहना है कि जब हम परम्पराओं का उद्‌गम और उनकी प्रकृति धर्म, धर्म विधियों में देखते हैं तब स्पष्ट रूप से लगता है कि ये परम्पराएं सड़क के आम आदमी के शोषण के लिये हैं। कुल मिलाकर देसाई का परम्पराओं के प्रति संदर्भ मार्क्सवादी है।

परम्परा का एक अवधारणा के रूप में प्रयोग ई. 1970 और 1980 के दशक में सामाजिक और राजनैतिक दशाओं के रूप में भी हुआ है। इस अवधि में देश में आधुनिकता ने प्रवेश कर लिया था। अब प्रश्न उठता है कि क्या आधुनिकता की इस नई दशा में भारतीय परम्पराएं बदल जायेंगी? क्या वे नई संस्थाओं जैसे कि स्वतंत्रता, स्वाधीनता, व्यक्तिवाद, आर्थिक विकास, नई उदारवादी वैचारिकी के साथ अपने अस्तित्व को बनाये रख सकेंगीं? क्या ये आधुनिकता की संस्थाएं पश्चिम से आई थीं? इनके साथ परम्पराओं का ताल–मेल हो सकेगा? मतलब हुआ, जब देश की **सामाजिक दशाओं** में परिवर्तन आ जाता है तब परम्पराओं पर क्या गुजरती है? इन प्रश्नों का उत्तर समाजशास्त्रियों ने देने का प्रयास किया।

मिल्टन सिंगर ने दक्षिण भारत में औद्योगिकता और सामाजिक संस्थाओं पर किये गये अपने एक अनुसंधान के आधार पर **निष्कर्ष निकाला कि भारतीय परम्पराएं आधुनिकीकरण के मूल्यों और प्रक्रियाओं के साथ अपना अनुकूलन कर लेती हैं।** नयी अर्थ व्यवस्था के परिणामस्वरूप जो बदलाव आते हैं, उनके अनुसार परम्पराएं तथा सामाजिक संरचना दोनों ही बदल जाते हैं। इसका अर्थ हुआ कि बदली हुई दशाओं में परम्पराओं की **भूमिका** , **सम्बन्ध** और इनकी **अन्तः क्रियाएँ** तीनों ही बदल जाती हैं। जो विचारक परम्पराओं को हिन्दू और भारतीय परम्पराओं के सन्दर्भ में देखते थे, अब वह स्थिति नहीं थी। परम्पराओं का जो क्लासिकल विश्लेषण था वह यथार्थ की परम्पराओं से मेल नहीं खाता था। सिंगर ने अपने अध्ययन के आधार पर मेक्स बेवर के थीसिस को अस्वीकार किया। उन्होंने कहा कि भारतीय परम्पराओं में ऐसे लक्षण हैं जो आधुनिकता के साथ भी अनुकूलन कर लेते हैं। सिंगर लिखते हैं :

अब भारत की परम्पराएं वे नहीं रहीं जिनका उल्लेख वेबर ने किया था। आज स्थिति यह है कि यहां के धर्मनिरपेक्ष विचारधारा वाले लोग परम्परा के अंकुश से मुक्त हो गये हैं और अपनी अर्थव्यवस्था तथा समाज को आधुनिक बनाने की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

योगेन्द्र सिंह का तर्क भी सिंगर के निष्कर्षों से मेल खाता है। वे कहते हैं कि समाज की दशाओं के अनुसार परम्परा की परिभाषा और अर्थ में भी परिवर्तन आ जाता है। ई. 1980 के दशक में आधुनिकता भारत में आई। ढ़ेर सारे विकास के कार्यक्रम चले, पंचायती राज व्यवस्था

व्यापक बनाई गई और इन सब कार्यक्रमों ने आधुनिकता की परम्परा से रूबरू करा दिया। अब परम्परा की परिभाषा बदल गई। इस पर टिप्पणी करते हुए योगेन्द्र सिंह कहते हैं:

अब हमारी परम्परा तथा सामाजिक संरचना की जो धारणाएं थीं, उनकी जड़ें ही बदल गई। परम्पराओं का जो आदर्श प्रारूप था उससे व्यावहारिक क्रियाएं एकदम बदल गईं।

सिंगर के अध्ययन के अतिरिक्त और कई अध्ययन भी हैं जो यह स्पष्ट रूप से बताते हैं कि इतिहास की दशाएं परम्परा को परिभाषित करने में हमारी बड़ी सहायता करती हैं। जब आधुनिकीकरण आता है तब परम्पराएं अपने ऐतिहासिक सन्दर्भ में इसका प्रत्युत्तर देती हैं। होता यह है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में परम्पराओं में अनुकूलन आता है और इस तरह उनमें बदलाव आ जाता है। कभी–कभी यह बदलाव पुरानी और नई परम्पराओं में द्वन्द्व भी पैदा कर देता है। यह भी सम्भव है कि परम्परा के एक स्तर पर परिवर्तन आ जाता है और दूसरा स्तर बदलता नहीं है। आधुनिकता के दौर में सामाजिक संरचना की परम्पराएं जैसे कि जाति, वर्ग और व्यवसाय में नई श्रेणियां आ जाती हैं और इन अवधारणाओं की परिभाषा ही बदल जाती है।

योगेन्द्र सिंह कहते हैं कि 1970 और 1980 में भारतीय संरचनाओं का परम्परा के सन्दर्भ में जो विश्लेषण हुआ, उसकी तीन सैद्धान्तिक तथा विधि सम्बन्धी दिशाएं थीं : (1) संरचनावाद (2) सांस्कृतिक और (3) संरचनात्मक–ऐतिहासिक)। संरचनावाद वह दिशा है जिसमें परम्परा का अर्थ वैचारिकी से लिया गया। प्रतीक इसके मुख्य आधार थे। सांस्कृतिक दिशा में परम्परा का मतलब संस्कृत साहित्य के मूल पाठों यथा–वेदान्त, पुराण और महाकाव्यों से लिया गया और तीसरी दिशा में परम्परा का विश्लेषण परिवर्तन और रूपान्तरण की प्रक्रियाओं द्वारा किया गया। यह दिशा स्पष्ट है, आधुनिकीकरण के कारण परम्पराओं में जो बदलाव आया, उस पर अपने आपको केन्द्रित करती है। इस परम्परा के नये आयामों का विश्लेषण (चर्चा) करने से पहले यह दोहराना चाहेंगे कि अब तक भारतीय सामाजिक संरचना को समझने के लिये मैंने परम्परा का प्रस्तुतीकरण वैचारिक, संस्कृति के मूल पाठ और आधुनिकीकरण द्वारा लाये गये परिवर्तन के माध्यम से किया है। जिसका अर्थ हुआ परम्परा वैचारिकी है, मूल पाठ है यानी किताबी है और आधुनिकीकरण सापेक्षिक है।

भारतीय समाज की व्याख्या में परम्पराओं की क्या भूमिका है। यह निश्चित है कि समाजशास्त्र में परम्पराओं को विभिन्न सन्दर्भों में देखा गया है। प्राच्य विद्यावादी परम्पराओं का उद्‌गम धर्म और धार्मिक ग्रन्थों में देखते हैं। संरचनावादी परम्परा का अर्थ वैचारिकी के सन्दर्भ में रखते हैं और कतिपय समाजशास्त्री इसकी व्याख्या बहुआयामी अर्थ में करते हैं। परम्पराओं के विश्लेषण का एक और सन्दर्भ भी है और यह सन्दर्भ मार्क्सवादी है। अब हम यह देखेंगे कि मार्क्सवाद परम्परा का क्या अर्थ निकालते हैं। मार्क्सवादियों के अनुसार भारतीय समाज की व्याख्या परम्परा के अर्थ में स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं है, क्योंकि मार्क्सवादी सन्दर्भ में जो भी अध्ययन हुए हैं, उनका सन्दर्भ किसान हैं और इसी सन्दर्भ में जाति और वर्ग को देखा गया है, लेकिन इस सम्पूर्ण विश्लेषण में परम्परा का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है।

आज परम्परा और आधुनिकता के बीच सम्बन्ध तनावग्रस्त नहीं कहे जा सकते। यह इसलिए कि जब सामाजिक संरचना का विश्लेषण ऐतिहासिक विधि से किया जायेगा तब इसमें परम्परा का स्थान अपने आप निश्चित हो जाता है। भारतीय सभ्यता के मौलिक तत्व इसकी **लोक संस्कृति** तथा इसके **मूल–पाठों** में निहित है और

इसी स्थानीय संस्कृति का सम्बन्ध महानगर संस्कृति से जुड़ा हुआ है। इस दृष्टि से जब हम आधुनिकता और उत्तर–आधुनिकता को देखते हैं तो परम्पराओं का पेराडिम हमारे लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। आज भी भारत के एक धर्मनिरपेक्ष, प्रजातांत्रिक और समाजवादी समाज के राष्ट्र निर्माण के उद्देश्य के सामने जाति व्यवस्था और इसके साथ जुड़ी हुई परम्पराएं जीवित हैं और इसी कारण यहां की सांस्कृतिक परम्पराएं अपनी पकड़ स्थानीय और क्षेत्रीय स्तर पर बनाए हुए हैं।

निष्कर्षतः हम यही कहना चाहेंगे कि भारत में आधुनिकता का मुकाबला परम्पराओं के साथ है और इस तरह का मुकाबला कोई हमारे देश में ही नहीं हुआ है, ऐसा नहीं है। एक स्तर पर परम्परागत रूप में पश्चिमी देशों में भी ज्ञानोदय काल के बाद वहां की परम्परा के साथ आधुनिकता को संघर्ष करना पड़ा था। पश्चिम और भारत में पायी जाने वाली परम्परा की संरचना में अन्तर था। इसलिए कि प्रत्येक देश का इतिहास भिन्न होता है, लोग भिन्न होते हैं और उनका बोध भी भिन्न होता है। परम्परा की परिभाषा इस अर्थ में देश की सामाजिक दशाओं से जुड़ी होती है।

भारत की सामाजिक दशाओं का सृजन यहां के इतिहास ने किया है। हमारी परम्पराओं की सबसे बड़ी चुनौती घरेलू रीति–रिवाजों के साथ–साथ देश के बाहर से आने वाले लोगों और आक्रमणकारियों से भी कम नहीं है। यहाँ शक, हूण, कुषाण, मुसलमान और अंग्रेज आये। ये सभी अपनी परम्पराओं को लेकर आये। स्थानीय परम्पराओं के सामने यह पहली चुनौती थी, अनुकूलन और उदारता की। इसके बाद उद्योगवाद और पूंजीवाद आये। उपनिवेशवाद ने स्थानीय परम्पराओं को एक और चुनौती दी और इस तरह आजादी की लड़ाई तथा स्वतंत्रता की प्राप्ति ने परम्परा की परिभाषा को बराबर संशोधित किया।

योगेन्द्र सिंह ने भारतीय परम्पराओं की परिभाषा इन्हीं सामाजिक दशाओं और इतिहास के उलट–फेर के सन्दर्भ में की है। उनके लिये परम्पराएं मूल्य से बंधी हुई है। और ये मूल्य हैं। गैर बराबरी यानी स्तरीकरण संघ निरन्तरता और अनुभवातीतता के। भारतीय समाज के इन मूल्यों को जाति व्यवस्था, पवित्र–अपवित्र की धारणा, धर्म, धार्मिक क्रियाओं और तिथि–त्योहारों में देखा जा सकता है। आधुनिकता के प्रवेश ने परम्परा और इससे जुड़े हुए मूल्यों को चुनौती दी है। वर्तमान का दलित लेखन अपनी प्रेरणा का स्रोत आधुनिकता को मानता है, क्योंकि आधुनिकता के प्रवेश से पराम्पराएँ कमजोर हुई हैं। और इसमें निरन्तर समय के अनुसार परिवर्तन अपेक्षित हो रहे हैं।

सन्दर्भ

1. भारतीय परम्पराओं का आधुनिकीकरण, आधुनिकता, उत्तर–आधुनिकता एवम् नव–समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, एस.एल. दोषी,रावत प्रकाशन,जयपुर,2002
2. चिंतन की परम्परा और दलित साहित्य–डॉ0 श्यौराज सिंह बेचैन व डॉ0 देवेन्द्र चौवे–लता साहित्य सदन गाजियाबाद–2010
3. युगपुरुष अम्बेडकर, सापला, बी0आर0एस0, प्रीतम प्रकाशन, चाचण नगर, जालंधर (पंजाब),2008
4. दलित साहित्य दशा और दिशा–माता प्रसाद,भारतीय दलित साहित्य अकादमी,नई दिल्ली,2003
5. दयानंद,ऋग्वेद (भाष्य) भाग–5
6. मनुस्मृति–अध्याय–2, श्लोक–6,पं0 हरगोविंद शास्त्री, मनुस्मृति, हिन्दी टीका
7. नवीन देवी शंकर, मिश्र सुशांत कुमार, उत्तर आधुनिकता कुछ विचार–वाणी प्रकाशन,दिल्ली–1997
8. पांडे, सीतांशु, भूषण,डॉ0 शशि आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के औजार–म.रा.प्र0 समिति,अक्षरा,भोपाल,म.प्र.–2009